राजेन्द्र प्रसाद जैन

बनाम

शील भद्र याजी एवं अन्य

28 फ़रवरी 1967

[के. एन. वांचू, आर. एस. बच्चावत एवं वी. भार्गव, न्यायमूर्तिगण]

चुनाव याचिका—रिश्वत तथा रिश्वत के प्रस्ताव का आरोप—वे तथ्य जिन पर न्यायालय विचार कर सकता है—क्या रिश्वत का प्रस्ताव तभी भ्रष्ट आचरण माना जाएगा जब उसमें किसी निश्चित राशि का उल्लेख हो।

लेटर्स पेटेंट—खंडपीठ का गठन करने वाले न्यायधीशों के मध्य मतभेद—क्या संदर्भ एकल न्यायाधीश को किया जा सकता है—"पीठ" शब्द में क्या एकल न्यायाधीश सम्मिलित है।

उत्तरदाता संख्या 1 ने अपीलकर्ता के राज्यसभा निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती दी कि अपीलकर्ता ने रिश्वत देने एवं रिश्वत का प्रस्ताव देने के रूप में भ्रष्ट आचरण किया। निर्वाचन अधिकरण ने यह निर्णय दिया कि उपर्युक्त दोनों प्रकार के भ्रष्ट आचरण अपीलकर्ता के विरुद्ध सिद्ध हो गए हैं। उच्च न्यायालय ने अधिकरण के आदेश को इस सीमा तक बनाए रखा कि दो वादों में रिश्वत का प्रस्ताव सिद्ध हुआ है। इसके विरुद्ध अपीलकर्ता प्रमाणपत्र के आधार पर इस न्यायालय में आया। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि— (i) जब मूल रूप से अपील सुनने वाली खंडपीठ के न्यायधीशों के बीच मतभेद उत्पन्न हुआ और उन्होंने वाद को किसी अन्य पीठ को संदर्भित करने का निर्देश दिया, तब लेटर्स पेटेंट के अनुच्छेद 28 के अंतर्गत मुख्य न्यायाधीश को यह अधिकार नहीं था कि वह वाद को एकल न्यायाधीश के समक्ष संदर्भित करें; (ii) इस

न्यायालय को स्वयं कुछ व्यक्तियों को रिश्वत दिए जाने के प्रस्ताव से संबंधित साक्ष्यों की जाँच करनी चाहिए, क्योंकि उच्च न्यायालय ने साक्ष्यों का गलत पाठ किया है एवं कुछ अप्रासंगिक साक्ष्यों पर भरोसा किया है; एवं (iii) सिद्ध तथ्यों से यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि अपीलकर्ता द्वारा रिश्वत का प्रस्ताव दिया गया था।

अभिनिर्धारित: (i) लेटर्स पेटेंट के अनुच्छेद 28 के अंतर्गत वाद का एकल न्यायाधीश को संदर्भ पूर्णतः सक्षम था। उक्त अनुच्छेद में प्रयुक्त "पीठ" शब्द में एकल न्यायाधीश भी सम्मिलित है। [21 एच]

(ii) अपीलकर्ता के विरुद्ध रिश्वत के आरोपों पर विचार करते समय न्यायालय इस तथ्य को भी ध्यान में रखने का अधिकारी था कि अपीलकर्ता साधन-संपन्न व्यक्ति था एवं बिहार में उसकी कोई राजनीतिक पृष्ठभूमि नहीं थी, जहाँ उसका कोई स्थायी आवास भी नहीं था। उच्च न्यायालय द्वारा साक्ष्यों का कोई गलत पाठ नहीं किया गया है एवं निष्कर्षों के पुनर्मूल्यांकन का कोई आधार नहीं बनता। [23 बी-सी एच]

(iii) यह सिद्धांत स्वीकार नहीं किया जा सकता कि रिश्वत का प्रस्ताव तभी रिश्वत माना जाएगा जब उसमें किसी निश्चित राशि का उल्लेख किया गया हो। [27 डी]

एम्परर बनाम अमीरुद्दीन सालेभॉय तैयबजी, ए॰आई॰आर॰ 1923 बंबई 44; *एम्परर बनाम चौबे दिनकर राव एवं अन्य,* ए॰आई॰आर॰ 1933 इलाहाबाद 513; *बॉल्स बनाम मेट्रोपॉलिटन बोर्ड ऑफ़ वर्क्स के वाद में,* (1865–66) 1 क्यू॰बी॰ वाद 337; *मोहन सिंह बनाम भंवरलाल एवं अन्य,* ए॰आई॰आर॰ 1964 एससी 1366; तथा *भारत संघ बनाम एच॰ सी॰ गोयल,* ए॰आई॰आर॰ 1964 ,एससी 364 विशिष्ट।

चतुर्भुज विठ्ठलदास जसानी बनाम मोरेश्वर परशुराम एवं अन्य, [1954] एस सी आर 817; स्टैब्रिज बरो के वाद संख्या XII (1869) आइ ओ'मैली एवं हार्डकैसल, पृष्ठ 66; तथा कोवेंट्री नगर क्षेत्र का वाद संख्या XV, (1869) आइ ओ'मैली एवं हार्डकैसल, पृष्ठ 97 —अवलंबित।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1966 का दीवानी अपील संख्या 1454

पटना उच्च न्यायालय द्वारा 3 मार्च 1966 को पारित निर्णय एवं आदेश (1965 का चुनाव अपील संख्या 3,) से अपील।

अपीलकर्ता की ओर से, *वेद व्यास, के. के. जैन एवं आर. गोपालकृष्णन।*

उत्तरदाता संख्या 1 की ओर से, *के. पी. वर्मा एवं डी. गोबर्धन।*

न्यायालय का निर्णय

न्यायमूर्ति भार्गव द्वारा दिया गया। वर्ष 1964 में राज्यसभा की आठ रिक्तियाँ थीं, जिनके लिए बिहार विधान सभा के निर्वाचन क्षेत्र से सदस्यों का निर्वाचन होना था। निर्वाचन 26 मार्च 1964 को होना था। कांग्रेस पार्टी ने इन आठ रिक्तियों के लिए नामित कुल तेरह अभ्यर्थियों में से छह अभ्यर्थी उतारे। नामांकन पत्रों की जाँच के पश्चात दो अभ्यर्थियों ने अपना नाम वापस ले लिया और परिणामस्वरूप वास्तविक निर्वाचन में छह कांग्रेस अभ्यर्थी एवं पाँच अन्य अभ्यर्थी रह गए। इन पाँच अन्य अभ्यर्थियों में अपीलकर्ता राजेन्द्र प्रसाद जैन भी थे, जो स्वतंत्र अभ्यर्थी के रूप में खड़े हुए थे। कांग्रेस के अभ्यर्थियों में उत्तरदाता शील भद्र याजी भी सम्मिलित थे। निर्वाचन में राजेन्द्र प्रसाद जैन निर्वाचित घोषित किए गए, जबकि उत्तरदाता शील भद्र याजी असफल रहे। इसके पश्चात उत्तरदाता संख्या 1 शील भद्र याजी ने अपीलकर्ता के राज्यसभा निर्वाचन को चुनौती देते हुए चुनाव याचिका दायर की। चुनौती का मुख्य आधार यह था कि अपीलकर्ता ने अपने निर्वाचन को सुनिश्चित करने के लिए रिश्वत देने या रिश्वत का प्रस्ताव देने

के रूप में भ्रष्ट आचरण किया। मूल रूप से दायर चुनाव याचिका में अनुसूची–I में उन पाँच व्यक्तियों के नाम थे, जिन्हें अपीलकर्ता द्वारा वास्तव में रिश्वत दिए जाने का आरोप लगाया गया था। अनुसूची–II में उन पाँच व्यक्तियों के नाम थे, जिन्हें रिश्वत का प्रस्ताव दिए जाने का आरोप था। बाद में किए गए संशोधन द्वारा अनुसूची–I में तीन नए नाम एवं अनुसूची–II में पाँच नए नाम जोड़े गए। निर्वाचन अधिकरण द्वारा संशोधन स्वीकार किए जाने के पश्चात, विचारण के समय याचिका में आठ व्यक्तियों को रिश्वत देने एवं दस व्यक्तियों को रिश्वत का प्रस्ताव देने के आरोप सम्मिलित थे। तथापि वास्तविक विचारण में कुछ आरोपों के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। निर्वाचन अधिकरण ने पूर्ण विचारण के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला कि उत्तरदाता संख्या 1 यह सिद्ध करने में सफल रहा कि अपीलकर्ता ने अनुसूची–I में उल्लिखित तीन व्यक्तियों को रिश्वत दी थी एवं अनुसूची–II में उल्लिखित चार व्यक्तियों को रिश्वत का प्रस्ताव दिया था। इसके विरुद्ध अपीलकर्ता ने पटना उच्च न्यायालय में अपील दायर की। उच्च न्यायालय में जब अपील खंडपीठ द्वारा सुनी गई, तब एक सदस्य न्यायमूर्ति महापात्र ने यह माना कि न तो रिश्वत देने का और न ही रिश्वत का प्रस्ताव देने का कोई आरोप सिद्ध हुआ है तथा अपील स्वीकार कर चुनाव याचिका अपास्त की जानी चाहिए। अन्य सदस्य न्यायमूर्ति रामरत्न सिंह ने अनुसूची–I में उल्लिखित तीन व्यक्तियों को रिश्वत देने तथा अनुसूची–II में उल्लिखित दो व्यक्तियों को रिश्वत का प्रस्ताव देने के संबंध में न्यायमूर्ति महापात्र से सहमति व्यक्त की, किंतु अनुसूची–II के दो वादों में उनसे असहमति व्यक्त करते हुए निर्वाचन अधिकरण के निर्णय को बनाए रखा। जिन दो व्यक्तियों के संबंध में रिश्वत का प्रस्ताव सिद्ध माना गया, वे शाह मुस्ताक अहमद एवं राम नारायण चौधरी थे, जो बिहार विधान सभा के सदस्य थे एवं कांग्रेस पार्टी से संबंधित थे। इस मतभेद के कारण दोनों न्यायमूर्तियों ने निर्देश दिया कि मतभेद के बिंदु को लेटर्स पेटेंट के अनुच्छेद 28 के अंतर्गत किसी अन्य पीठ को संदर्भित करने हेतु वाद माननीय मुख्य न्यायाधीश

के समक्ष रखा जाए। मुख्य न्यायाधीश के निर्देशानुसार अपील न्यायमूर्ति यू. एन. सिन्हा के समक्ष आई, जिन्होंने दोनों वादों में न्यायमूर्ति रामरत्न सिंह के दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की और परिणामस्वरूप बहुमत के अनुसार अपील अपास्त कर दी गई तथा यह माना गया कि अपीलकर्ता द्वारा शाह मुस्ताक अहमद एवं राम नारायण चौधरी को रिश्वत का प्रस्ताव दिया जाना सिद्ध है। इसके विरुद्ध अपीलकर्ता पटना उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त प्रमाणपत्र के आधार पर इस न्यायालय में अपील लेकर आया।

अपील में अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री वेद व्यास दारा तीन बिंदु उठाए गए। पहला विधिक प्रश्न यह था कि पटना उच्च न्यायालय की वह खंडपीठ, जिसने मूल रूप से अपील सुनी थी, ने मतभेद के बिंदु को लेटर्स पेटेंट के अनुच्छेद 28 के अंतर्गत किसी अन्य "पीठ" को संदर्भित करने का निर्देश दिया था और इसलिए मुख्य न्यायाधीश द्वारा बाद में एकल न्यायाधीश को किया गया संदर्भ सक्षम नहीं था। यह तर्क दिया गया कि संदर्भ आदेश में प्रयुक्त "अन्य पीठ" का अर्थ दो या अधिक न्यायाधीशों की पीठ है, न कि एकल न्यायाधीश। हमारे मत में यह तर्क दो कारणों से असंगत है। पहला, संदर्भ आदेश में प्रयुक्त "पीठ" शब्द का यह आवश्यक अर्थ नहीं है कि वाद दो या अधिक न्यायाधीशों के समक्ष ही रखा जाए। इस संदर्भ में पटना उच्च न्यायालय के नियमावली के अध्याय दो के नियम 1(XI) एवं नियम तीन की भाषा महत्त्वपूर्ण है। नियम 1 (XI) के अंतर्गत भारतीय कंपनी अधिनियम के अंतर्गत वाद एकल न्यायाधीश द्वारा सुना जाता है; एवं नियम तीन यह दर्शाता है कि नियम 1 (XI) के अंतर्गत वाद सुनने वाली पीठ द्वारा किस प्रकार के आदेश पारित किए जा सकते हैं। इस प्रकार पटना उच्च न्यायालय के नियमों में स्वयं एकल न्यायाधीश को भी "पीठ" कहा गया है। व्यवहार में भी उच्च न्यायालय में निर्णय देने वाले न्यायाधीशों के संदर्भ में "एकल पीठ" एवं "खंडपीठ" जैसे शब्द प्रचलित हैं। अतः संदर्भ आदेश में प्रयुक्त "पीठ" शब्द अपने सामान्य अर्थ में भी एकल

न्यायाधीश को सम्मिलित करता है। दूसरा, संदर्भ आदेश में यह उल्लेख है कि वाद को लेटर्स पेटेंट के अनुच्छेद 28 के अंतर्गत संदर्भित किया जाना है। लेटर्स पेटेंट के अनुच्छेद 28 में यह उपबंध है कि ऐसे वादों में वाद को उच्च न्यायालय के एक या अधिक अन्य न्यायाधीशों के समक्ष संदर्भित किया जाएगा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मूल खंडपीठ का आशय यह था कि वाद को मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाए ताकि वे इसे न्यायालय के एक या अधिक अन्य न्यायाधीशों के समक्ष संदर्भित कर सकें। इसके अतिरिक्त, पटना उच्च न्यायालय के नियमों के अंतर्गत मुख्य न्यायाधीश को यह विवेकाधिकार प्राप्त था कि वे अनुच्छेद 28 के अंतर्गत प्रस्तुत वाद को एक न्यायाधीश या एक से अधिक न्यायाधीशों के समक्ष सुनवाई हेतु नियत करें। इस वाद में मुख्य न्यायाधीश ने उक्त विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए वाद को न्यायमूर्ति यू. एन. सिन्हा के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। अतः न्यायमूर्ति यू. एन. सिन्हा को किया गया संदर्भ एवं उनके द्वारा दिया गया निर्णय किसी भी प्रकार से अक्षम नहीं था।

विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया दूसरा बिंदु यह था कि पटना उच्च न्यायालय द्वारा यह जो निष्कर्ष दर्ज किया गया कि अपीलकर्ता द्वारा शाह मुस्ताक अहमद तथा राम नारायण चौधरी को रिश्वत का प्रस्ताव दिए जाने की दो घटनाएँ सिद्ध हैं, वह गलत है। उनका तर्क था कि हमें इस निष्कर्ष के गुण-दोष पर विचार करना चाहिए, क्योंकि जिन न्यायमूर्तियों ने यह निष्कर्ष दर्ज किया, उनमें से कम से कम एक, अर्थात न्यायमूर्ति रामरत्न सिंह, ने साक्ष्यों का गलत पाठ किया है तथा कुछ अप्रासंगिक बातों को ध्यान में रखा है। इस संदर्भ में हमारे समक्ष यह इंगित किया गया कि न्यायमूर्ति रामरत्न सिंह ने दस्तावेज़-संकलन के पृष्ठ 454 पर यह कहा है कि "यह सत्य है कि अभियोजन साक्षी 2 ने अभियोजन साक्षी 9 तथा 14 के नाम सितंबर या अक्टूबर 1964 से पूर्व याजी को नहीं बताए थे, किंतु प्रथम बार याजी से हुई बातचीत के समय जिन व्यक्तियों से उसने घटना के संबंध में बात की थी, उनके नामों का खुलासा न किया जाना

महत्त्वपूर्ण नहीं है।" अभियोजन साक्षी 2 राम नारायण चौधरी थे, जो उन व्यक्तियों में से एक थे जिन्हें अपीलकर्ता द्वारा रिश्वत का प्रस्ताव दिए जाने का आरोप था, तथा अभियोजन साक्षी 9 एवं 14 वे दो व्यक्ति थे जिन्हें उनके कथन की पुष्टि हेतु परीक्षित किया गया था। उत्तरदाता याजी ने चुनाव याचिका के विचारण के दौरान, अक्टूबर 1964 में जब पहली बार अपने साक्षियों की सूची प्रस्तुत की, तब अभियोजन साक्षी 9 एवं 14 के नाम न्यायालय को नहीं बताए थे। इसी परिस्थिति से विद्वान न्यायधीश ने यह अनुमान निकाला कि इन दोनों व्यक्तियों के नाम अभियोजन साक्षी 2 द्वारा सितंबर या अक्टूबर 1964 से पूर्व उत्तरदाता याजी को नहीं बताए गए थे। विद्वान अधिवक्ता ने यह इंगित किया कि याजी ने यह स्वीकार किया था कि इन दोनों साक्षियों के नाम उसे सितंबर 1964 में बता दिए गए थे। तथापि, यह नहीं कहा जा सकता कि विद्वान न्यायधीश ने साक्ष्यों का गलत पाठ किया, यदि उन्होंने याजी की इस स्वीकृति पर भरोसा न करके उन साक्ष्यों को प्राथमिकता दी, जिनसे यह प्रकट होता है कि इन दोनों साक्षियों के नाम सितंबर या अक्टूबर 1964 से पूर्व प्रकट नहीं किए गए थे। अधिकतम यह साक्ष्यों के मूल्यांकन का प्रश्न हो सकता है, किंतु इसे साक्ष्यों के गलत पाठ का उदाहरण नहीं माना जा सकता।

जहाँ तक रामरत्न सिंह, न्यायमूर्ति द्वारा कथित रूप से अप्रासंगिक साक्ष्यों पर भरोसा किए जाने का दूसरा पहलू है, इस संबंध में यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उन्होंने अपने निर्णय के दस्तावेज़-संकलन के पृष्ठ 444 पर इस तथ्य का उल्लेख किया कि अपीलकर्ता एक साधन-संपन्न व्यक्ति है तथा बिहार में उसकी कोई राजनीतिक पृष्ठभूमि नहीं है और वहाँ उसका कोई स्थायी आवास भी नहीं है। यह तर्क दिया गया कि ये तथ्य उसके निर्वाचन को सुरक्षित करने के लिए रिश्वत देने या रिश्वत का प्रस्ताव देने के आरोप से पूर्णतः अप्रासंगिक हैं। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि यह कैसे कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता का बिहार में कोई राजनीतिक पृष्ठभूमि

न होना तथा उसका साधन-संपन्न होना अप्रासंगिक है। ये तथ्य निश्चित रूप से इस प्रश्न पर विचार करने में सहायक हो सकते हैं कि क्या अपीलकर्ता द्वारा रिश्वत देने या रिश्वत का प्रस्ताव देने की संभावना थी। स्पष्ट है कि कोई ऐसा व्यक्ति जिसके पास साधन ही न हों, वह मतदाताओं को अपने पक्ष में मतदान कराने के लिए रिश्वत देने या उसका प्रस्ताव देने में सक्षम नहीं हो सकता। इसी प्रकार, बिहार में राजनीतिक पृष्ठभूमि का अभाव इस बात का कारण हो सकता है कि अपीलकर्ता ने मत प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के भ्रष्ट आचरण का सहारा लिया हो। इसके अतिरिक्त दस्तावेज़-संकलन के पृष्ठ 451 पर निर्णय के उस अंश का भी उल्लेख किया गया, जहाँ विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि कोई अभ्यर्थी जो किसी मतदाता को रिश्वत देना चाहता है, वह पहले कुछ संकेत भेजता है, किंतु यहाँ समय बहुत कम था, क्योंकि विभिन्न कांग्रेस अभ्यर्थियों को आवंटन पार्टी नेतृत्व द्वारा केवल 24 या 25 मार्च को किया गया था और निर्वाचन 26 मार्च को होना था। अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि कांग्रेस अभ्यर्थियों को किए गए इस आवंटन का उल्लेख अप्रासंगिक है। हम इस तर्क में भी कोई योग्यता नहीं पाते। यह प्रतीत होता है कि व्यवस्था यह थी कि बिहार विधानसभा में कांग्रेस पार्टी के सदस्यों को छह समूहों में विभाजित किया गया था और प्रत्येक समूह को किसी विशेष अभ्यर्थी के पक्ष में मतदान करने का निर्देश दिया गया था। यही वह आवंटन था जिसका उल्लेख विद्वान न्यायाधीश ने किया। यह परिस्थिति पूर्णतः प्रासंगिक है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि कोई अन्य अभ्यर्थी यदि कांग्रेस पार्टी के किसी सदस्य को रिश्वत देने का प्रयास करता, तो वह उसी मतदाता से संपर्क करता जिसे ऐसे अभ्यर्थी के पक्ष में मतदान करने के लिए कहा गया हो जिसे वह पसंद न करता हो या किसी अन्य कारण से समर्थन देने के लिए इच्छुक न हो। इसके विपरीत, ऐसे मतदाता से संपर्क करना निरर्थक होता, जिसे किसी ऐसे अभ्यर्थी के पक्ष में मतदान करने का निर्देश मिला हो, जिससे उसके मैत्रीपूर्ण संबंध हों या जिसे वह स्वयं समर्थन देना चाहता हो। इन परिस्थितियों में यह

नहीं कहा जा सकता कि विद्वान न्यायधीश द्वारा कोई अप्रासंगिक आलेख विचार में ली गई। अतः हम यह नहीं मान सकते कि साक्ष्यों का कोई ऐसा गलत पाठ किया गया है या कोई ऐसी अप्रासंगिक आलेख स्वीकार की गई है, जो हमें निर्वाचन अधिकरण द्वारा विचारण के स्तर पर तथा उच्च न्यायालय द्वारा अपील के स्तर पर एक साथ दर्ज किए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों को पुनः खोलने के लिए उचित ठहराए। परिणामस्वरूप, हम विद्वान अधिवक्ता के इस सुझाव को अस्वीकार करते हैं कि हमें स्वयं साक्ष्यों का पुनः परीक्षण कर, उनका पुनर्मूल्यांकन करते हुए, इस तथ्यात्मक निष्कर्ष की पुनः जांच करनी चाहिए कि अपीलकर्ता द्वारा शाह मुस्ताक अहमद तथा राम नारायण चौधरी को रिश्वत का प्रस्ताव दिया गया था।

विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया अंतिम एवं तीसरा बिंदु यह था कि उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्यात्मक निष्कर्षों के आधार पर भी हमें विधि के प्रश्न के रूप में यह मानना चाहिए कि वास्तव में अपीलकर्ता द्वारा कोई रिश्वत का प्रस्ताव नहीं दिया गया था। यह तर्क इस आधार पर प्रस्तुत किया गया कि दर्ज निष्कर्षों से यह नहीं प्रकट होता कि शाह मुस्ताक अहमद या राम नारायण चौधरी में से किसी को भी रिश्वत के रूप में कोई निश्चित राशि प्रस्तावित की गई थी। शाह मुस्ताक अहमद के वाद में यह निष्कर्ष है कि अपीलकर्ता ने उससे यह कहा था— "तुम्हारे निर्वाचन में बहुत धन व्यय होता है, इसलिए मुझसे कुछ धन ले लो और मुझे अपना प्रथम वरीयता मत दो।" राम नारायण चौधरी के वाद में प्रस्ताव का आशय उस समय और अधिक स्पष्ट हो जाता है, जब अपीलकर्ता द्वारा प्रयुक्त वास्तविक हिंदी शब्दों पर विचार किया जाता है, जो इस प्रकार थे—

> "इस पर जैन साहब ने कहा कि आपको भी तो चुनाव में खर्च-बर्च हुआ होगा। इसलिए हम आपको कुछ सेवा करना चाहते हैं। आप हमारी मदद कीजिए।"

यह सत्य है कि इन शब्दों में प्रत्यक्ष रूप से धन देने का स्पष्ट प्रस्ताव नहीं किया गया, किंतु प्रयुक्त भाषा से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि अपीलकर्ता, राम नारायण चौधरी द्वारा बिहार विधान सभा के अपने निर्वाचन में किए गए व्यय में योगदान के रूप में, अपनी सेवाएं प्रदान करने की पेशकश कर रहा था। अतः दोनों ही वादों में यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता द्वारा इन मतदाताओं को राज्य सभा के निर्वाचन में अपने पक्ष में मत डालने के लिए प्रेरित करने हेतु धन भुगतान का प्रस्ताव किया गया था।

तथापि, विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि जब तक अपीलकर्ता द्वारा कोई निश्चित राशि प्रस्तावित नहीं की गई, तब तक वास्तव में रिश्वत का कोई प्रस्ताव नहीं माना जा सकता। उनके अनुसार, यह केवल रिश्वत देने की मंशा व्यक्त करने की अवस्था थी, न कि वास्तविक रिश्वत-प्रस्ताव। यह कहा गया कि किसी प्रस्ताव को तभी रिश्वत का प्रस्ताव माना जा सकता है, जब उसमें रिश्वत के रूप में दी जाने वाली निश्चित धनराशि का उल्लेख हो और उस राशि पर किसी प्रकार की वार्ता की गुंजाइश न हो। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने इंग्लैंड के कानूनों पर आधारित हैल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ इंग्लैंड, तृतीय संस्करण, खंड 8, पृष्ठ 69 में "प्रस्ताव" शब्द के अर्थ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। किन्तु हैल्सबरी द्वारा वहाँ "प्रस्ताव" शब्द की व्याख्या संविदा विधि के संदर्भ में की गई है और हम यह नहीं मानते कि उससे वर्तमान वाद में कोई सहायता प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने आपराधिक विधि के अंतर्गत रिश्वत-प्रस्ताव की अवधारणा से संबंधित कुछ भारतीय निर्णयों का भी उल्लेख किया। मुख्य रूप से जिस निर्णय अवलंबित, वह *एम्परर बनाम अमीरुद्दीन सालेभॉय तैयबजी*[1] था, जिसमें अभियुक्त द्वारा एक सरकारी कर्मचारी से यह शब्द कहे जाने का आरोप था कि "मेरा चचेरा भाई आपको पाँच हजार रुपये देना चाहता है।" यह निर्णय दिया गया कि ये शब्द रिश्वत का प्रस्ताव नहीं

---

1 ए आइ आर 1923 बाम्बे 44

बनाते। हम यह नहीं मानते कि वह निर्णय वर्तमान वाद के समानांतर है। उस वाद में अभियुक्त ने स्वयं रिश्वत का प्रस्ताव नहीं किया था, बल्कि केवल यह संकेत दिया था कि उसका चचेरा भाई ऐसा करना चाहता है। इस प्रकार वहाँ अभियुक्त द्वारा प्रत्यक्ष रूप से रिश्वत का प्रस्ताव नहीं था।

इसी प्रकार *एम्परर बनाम चौबे दिनकर राव एवं अन्य*[1] के वाद में अभियुक्त ने यह स्वीकार किया था कि वह एक न्यायाधीश के पास गया और उसने कहा कि यदि वाद का निर्णय वादी के पक्ष में हुआ तो वह 10,000 रुपये देगा, किंतु उसने यह अस्वीकार किया कि वह वादी की ओर से गया था। वहाँ भी अभियुक्त द्वारा न्यायाधीश को स्वयं धन देने का कोई प्रस्ताव नहीं किया गया था। वर्तमान वाद में, अपीलकर्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द स्पष्ट रूप से इस आशय के प्रस्ताव के समान थे कि वह स्वयं उन दोनों मतदाताओं को धनराशि देगा।

इसी प्रकार, हमें नहीं लगता कि ब्लैकबर्न, न्यायमूर्ति के *बॉल्स बनाम मेट्रोपॉलिटन बोर्ड ऑफ वर्क्स*[2] मामले में दिए गए निर्णय से कोई सहायता ली जा सकती है। जहाँ भूमि के मुआवजे के संबंध में यह माना गया था कि "मुआवजे का प्रस्ताव ऐसा प्रस्ताव होना चाहिए जिसे दावेदार या तो स्वीकार कर सकता है या अस्वीकार कर सकता है; यदि यह मुआवजे और लागत के लिए एक ही राशि का हो, तो दावेदार को यह पता नहीं चल सकता कि उसे अपनी भूमि को हुए नुकसान के लिए कितना मिलेगा और अपनी लागत के लिए कितना मिलेगा। इसलिए, वह इससे गुमराह हो सकता है।" यह फिर से एक ऐसा वाद था जहाँ विद्वान न्यायाधीश के समक्ष विचार के लिए आया मुद्दा भूमि के मुआवजे के प्रस्ताव से संबंधित था, जो एक अनुबंध के संबंध में एक प्रस्ताव की प्रकृति का होगा, न कि चुनाव कानून के तहत रिश्वत के प्रस्ताव की।

---

1 ए आइ आर 1933 ऑल 513

2 (1865-66) I क्यू बी वाद 337.

इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत पर भी भरोसा किया गया, *मोहन सिंह बनाम भँवरलाल एवं अन्य*[1] वाद में, जिसमें, निर्वाचन विधि के अंतर्गत "प्रलोभन" के संबंध में यह कहा गया था: "'प्रलोभन' अपने सामान्य अर्थ में 'संतुष्टि' का अर्थ रखता है। जिस संदर्भ में इस अभिव्यक्ति का उपयोग किया गया है तथा स्पष्टीकरण द्वारा उसकी सीमांकन के साथ, इसका अर्थ ऐसी किसी मूल्यवान वस्तु से होना चाहिए जो किसी व्यक्ति के लक्ष्य, उद्देश्य या इच्छा को संतुष्ट करने के लिए उपयुक्त हो, चाहे वह वस्तु धन के रूप में मूल्यांकित की जा सके या नहीं; किन्तु किसी व्यक्ति को किसी नामित या अनाम नियोक्ता के साथ रोजगार प्राप्त करने में सहायता करने का मात्र प्रस्ताव ऐसी 'प्रलोभन' नहीं माना जाएगा।" हम पुनः यह देखने में असमर्थ हैं कि वह निर्णय हमारे समक्ष उपस्थित बिंदु को किस प्रकार प्रभावित करता है। उस वाद में, केवल यह कहा गया था कि किसी अन्य व्यक्ति के साथ रोजगार प्राप्त करने में सहायता करने का मात्र प्रस्ताव 'प्रलोभन' नहीं है। हमारे समक्ष वाद में, प्रस्ताव स्पष्ट रूप से धन के संबंध में था और, यदि उसे स्वीकार किया जाता, तो वह स्वाभाविक रूप से मतदाता की धन प्राप्त करने की इच्छा को संतुष्ट करता।

इस न्यायालय के निर्णय, *भारत संघ बनाम एच. सी. गोयल*[2], का भी उल्लेख किया गया, जिसमें यह कहा गया था कि उतरदाता ने अपने कार्य के संबंध में जिस शासकीय कर्मचारी से संपर्क किया था, उसके समक्ष अपनी बटुए से एक सौ रुपये का नोट निकाला था, और उस शासकीय कर्मचारी ने इस आचरण पर कड़ी अस्वीकृति व्यक्त की, जिसके पश्चात् उतरदाता ने "नहीं" कहा और नोट सहित बटुए को अपनी जेब में रख लिया। उस वाद के तथ्य भी स्पष्ट रूप से भिन्न थे, क्योंकि इस न्यायालय द्वारा केवल यह कहा गया था कि बटुए से नोट का मात्र

---

1 ए.आइ.आर 1964 एस सी 1366

2 ए.आइ.आर 1954 एस सी 364

निकालना प्रस्ताव के समान नहीं है, जबकि हमारे समक्ष वाद में यह निष्कर्ष था कि धन देने का स्पष्ट प्रस्ताव किया गया था।

इस संबंध में, हम इस न्यायालय के निर्णय *चतुर्भुज विठलदास जसानी बनाम मोरेश्वर परशराम एवं अन्य*[1] का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें न्यायालय को जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 7 (घ) में निर्दिष्ट किसी प्रत्याशी की अयोग्यता का निर्णय करते समय वस्तुओं की आपूर्ति के लिए अनुबंध के अस्तित्व पर विचार करना पड़ा था। इस पहलू पर विचार करते हुए, न्यायालय ने संविदा अधिनियम के उद्देश्यों के लिए अनुबंध और निर्वाचन विधि के उद्देश्यों के लिए अनुबंध के बीच अंतर किया। हमारे मत में, जब निर्वाचन विधि में "रिश्वत के प्रस्ताव" शब्दों के क्षेत्र का विचार किया जाता है, तो उस अभिव्यक्ति का संकीर्ण अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए। वास्तव में, उस अभिव्यक्ति के क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि चुनाव पूर्णतः शुद्ध वातावरण में संपन्न हों, और "रिश्वत के प्रस्ताव" अभिव्यक्ति को व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए।

बरो ऑफ स्टैलीब्रिज के वाद संख्या XII में[2], ब्लैकबर्न, न्यायाधीश को उस समय इंग्लैंड में प्रचलित निर्वाचन विधि के अंतर्गत रिश्वत देने की व्याख्या के प्रश्न से संबंधित होना पड़ा। उस समय, रिश्वत का प्रस्ताव वहाँ के कानून के अंतर्गत भ्रष्ट आचरण नहीं माना जाता था, और फिर भी न्यायाधीश ब्लैकबर्न ने कहा कि: "इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि किसी श्रमिक या अन्य व्यक्ति को मतदान के लिए आने पर किसी प्रकार की हानि न होने देने का वचन या प्रस्ताव अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत आता है, और यह रिश्वत तथा भ्रष्टाचार का कृत्य है। थॉर्नली और वॉन ने स्पष्ट रूप से दो मतदाताओं को यह प्रस्ताव और वचन दिया कि यदि वे आकर मतदान करेंगे तो उन्हें उस दिन की मजदूरी दी जाएगी। यह उन लोगों की ओर से रिश्वत

1 [1954]एस सी आर 817

2 (1869) [ओ मैली एवं हार्डकैसल पृष्ट 66

का कृत्य था जिन्होंने इसे स्वीकार किया, और उन लोगों की ओर से भी जिन्होंने इसे प्रस्तुत किया।"

कोवेंट्री बरो के वाद संख्या XV [1] में कहा गया था: "रिश्वतखोरी के संबंध में, साथ ही साथ सौदेबाजी के संबंध में, हम संवैधानिक कानून का एक बुद्धिमान और लाभकारी नियम मानते हैं, जो 17 वें और 18 वें वियतनाम के अनुच्छेद 102 से बिल्कुल अलग है, कि चुनाव की निष्पक्षता और स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से, उम्मीदवारों को अपने स्वयं के कार्यों के साथ-साथ अपने एजेंटों के कार्यों के लिए भी जवाबदेह होना चाहिए।" आगे बढ़ते हुए, केवल रिश्वत की पेशकश के संबंध में कहा गया: "यद्यपि इन वादों को दोनों विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा रिश्वतखोरी के वादों से नीचे रखा गया है, लेकिन यह नहीं माना जा सकता है कि रिश्वत की पेशकश करना वास्तविक भुगतान जितना बुरा नहीं है। यह एक कानूनी अपराध है, हालांकि इन वादों को सबूतों की कठिनाई के कारण निम्न श्रेणी का माना गया है, क्योंकि ऐसी संभावना है कि लोग उन बातचीत के अपने विवरणों में गलती कर सकते हैं जिनमें पेशकश की गई थी।" जबकि धन के वास्तविक भुगतान के संबंध में कोई गलती नहीं हो सकती।" इंग्लैंड में, इस प्रकार, रिश्वत देने की भ्रष्ट प्रथा से संबंधित कानून को रिश्वत की पेशकशों को शामिल करने के लिए विस्तारित किया गया था, हालांकि यह माना गया था कि रिश्वत की पेशकश के सख्त सबूत पर जोर दिया जाना चाहिए क्योंकि गलतफहमी की संभावना थी। हमारे सामने मौजूद वाद में, प्रस्ताव इतने स्पष्ट शब्दों में था कि गलतफहमी की कोई गुंजाइश नहीं थी। दोनों वादों में, और विशेष रूप से शाह मुस्ताक अहमद के वाद में, प्रस्ताव वोट हासिल करने के लिए पैसे देने का था। हम विद्वान अधिवक्ता द्वारा सुझाए गए इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते कि रिश्वत का प्रस्ताव तब तक रिश्वत नहीं माना जा सकता जब तक कि प्रस्ताव में कोई विशिष्ट राशि न बताई गई हो। कानून

---

1 (1869) [ओ मैली एवं हार्डकैसल पृष्ट 97

में ऐसी कोई शर्त नहीं है, और यदि हम इस तर्क को स्वीकार करते हैं, तो इससे भ्रष्टाचार के लिए इस तरह से रास्ता खुल जाएगा कि यह प्रावधान पूरी तरह से अप्रभावी हो जाएगा। रिश्वत देकर वोट हासिल करने की चाह रखने वाला उम्मीदवार हमेशा पहले मतदाता से पूछ सकता है कि क्या वह रिश्वत के रूप में पैसा स्वीकार करने को तैयार है और मतदाता की सहमति मिलने के बाद ही उसे कोई विशिष्ट राशि देनी चाहिए। एक बार जब मतदाता वास्तव में प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है, तो रिश्वतखोरी के उस वाद का कोई सबूत उपलब्ध होने की संभावना नहीं है। किसी उम्मीदवार द्वारा जाकर कुछ पैसे देने मात्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने मतदाता को रिश्वत देकर उसका वोट हासिल करने का प्रस्ताव रखा है। हालांकि, इस बात की संभावना बनी रहती है कि रिश्वत के रूप में दी जाने वाली राशि को लेकर बातचीत विफल हो जाए, तो वह अपने उद्देश्य में सफल न हो पाए। इस वाद में साबित हुए रिश्वत के प्रस्ताव से, हमारी राय में, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 123 की शर्तें स्पष्ट रूप से पूरी होती हैं। उच्च न्यायालय का वह निर्णय, जिसमें चुनाव न्यायाधिकरण के उस निर्णय को बरकरार रखा गया था जिसमें अपीलकर्ता के राज्यसभा चुनाव को रद्द किया गया था, सही था और उसे संधारित रखा जाना चाहिए। अपील असफल हुई और खर्च सहित खारिज की जाती है।

जी सी *अपील खारिज*

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।